उत्तराखण्ड का विणई वाद्ययंत्र

डॉ.पंकज उप्रेती
प्रभारी संगीत विभाग
राजकीय महाविद्यालय टनकपुर (चम्पावत)
उत्तराखण्ड
Email: editorpighaltahimalay@gmail.com

मानव सभ्यता के साथ संगीत भी चला आ रहा है। अपनी अभिव्यक्तियों को व्यक्त करने के लिये लोकजीवन में पहले पहल कुछ इशारे, कुछ स्वरों से इसकी शुरुआत रही होगी। जो धीरे–धीरे विकसित होते हुए धुनों में बनती चली गई। धुनों के लिये सबसे प्रथम यंत्र तो गात्रवीणा यानि की कंठ ही है। अपने कंठ से तरह – तरह की आवाजें निकालते हुए जब कोई धुन हमें प्रिय लगती है तो उसे हम बार–बार दुहराते हैं। संगीत की इस भाषा के साथ–साथ वाद्ययन्त्र विकसित होते गये।

विकास की इस प्रक्रिया में संगीत का दायरा बढ़ता चला गया और वाद्ययन्त्रों में भी बढ़ोत्तरी होती रही। गायन और नृत्य के साथ संगत के लिये अथवा एकल बजाये जाने वाले कई वाद्ययन्त्र अब बिसरा दिये गये हैं। ऐसा ही यन्त्र है– 'विणई'। विणई/मुरचंग प्रायः सभी जगह रहा है परन्तु उन स्थानों पर ज्यादा प्रचार में रहा जहाँ पशुचारण व वन कर्मों में लोग जुटे रहे। देश–विदेश में मोरसिंग, मुखरशंखु, मोरछंग नाम भी सुनाई दिये हैं। अंग्रेजी में इसका नाम Jaw Harp है। उत्तराखण्ड के अलावा राजस्थान, बंगाल, कर्नाटक, आसाम, उड़ीसा, आन्ध्र प्रदेश, तमिलनाडु में इसका प्रचलन रहा है। नेपाल, पाकिस्तान के सिंध प्रान्त, चीन, नॉर्वे, रूस, ईरान, इटली, हंगरी, फ्रांस के लोक संगीत में भी इसका प्रयोग होता रहा। वाद्य संगीत के विशेषज्ञ डॉ. लालमणि मिश्र कहते हैं– ''प्राकृतिक संगीत ही लोकगीतों की परिभाषा है। मानव जब असभ्य था, तक वह अपने उद्‌गारों को प्रकट करने के लिए वाणी द्वारा कुछ अस्पष्ट शब्दों का उच्चारण करता था। उस समय वही वाणी उसकी कविता और वही अस्पष्ट शब्द अथवा ध्वनियुक्त स्फुरण उसका संगीत होता था।''[1]

संगीत की बात होते ही सबसे प्रथम गायन की चर्चा होती है परन्तु यह स्वयंसिद्ध है कि गायन को लय देने के लिये वाद्य होते हैं। इसके अलावा वाद्यों की अपनी तरंग हमें रंजित करती रही है। आज भी बचपन के खेल में बच्चे मुंह में धागा वगैरह दबाकर एक अंगुली से उसे बजाते हैं, आम की कोमल गुठली को घिसकर उसे बाजते हैं, माचिस की खाली डिब्बी में धागा या सुतली बांधकर एक से दूसरे साथी को सुनाते हैं। पत्थरों को आपस में बजाकर उनकी आवाज से प्रसन्न होते हैं। वर्तमान की

भागमभाग और साधनों की भरमार के कारण हो सकता है शहरी बच्चे इस प्रकार के खेलों से दूर हों लेकिन वह भी किसी न किसी रूप में इस प्रकार के खेल खेलते हैं और झिंग–झिंग, टिन–टिन, डम–डम इत्यादि आवाजों के साथ आनन्दित होते हैं। ऐसा ही कुछ मानव जीवन के शुरुआत में हुआ था। सभ्यता विकसित होती रही लेकिन वनों में ग्वालवालों ने मनोरंजन के लिये इसी प्रकार के लोकगीतों और लोकवाद्यों का प्रयोग किया। वंशी, अलगोजा, मुरचंग/विणई इत्यादि बजाकर मनोरंजन व अपने पशुओं को संकेत के लिये धुनों का छेड़ा। इन्हीं में से वंशी के प्रकार बांसुरी खूब सुहाई और शास्त्रीय संगीत के मंचों तक में धूम मचा रही है। अवनद्ध वाद्य विकसित होकर तबले के रूप में गायन व अन्य संगतों में श्रेष्ठ है। तंत्रवाद्य, गजवाद्यों ने भी शास्त्रीय संगीत का श्रृंगार किया है। दूसरी ओर लोक के कई वाद्ययन्त्र विलुप्त होते जा रहे हैं। इन्हीं में से 'विणई' है।

लोक अपनी प्रकृति व प्रवृत्ति के अनुसार वाद्ययन्त्रों का प्रयोग करता रहा है। जो कुछ हमें उपलब्ध है, उसी अनुरूप संगत के लिये वाद्ययन्त्र को गढ़ते चले जाते हैं। डॉ.लालमणि मिश्र लोक–संगीत–वाद्यों के बारे में कहते हैं– ''सामन्यतः लोक–संगीत के वाद्यों की समस्त सामग्री प्रकृति–जन्य होती है। जिसमें मिट्टी, काठ, खाल मुख्य हैं किन्तु उनकी बनावट में कहीं–कहीं कारीगरी के अद्भुत नमूने देखने को मिलते हैं।''[2]

'मुरचंग' को 'मुखचंग' की संज्ञा भी दी गई है। इसके दो कारण हैं– पहला तो, इसके बीच के भाग को दातों से दबा कर बजाते हैं। दूसरा, इसकी 'भन्न–भन्न' व 'भिन्न–भिन्न' की आवाज द्वारा ताल वाद्य चंग जैसा ही बजाकर गीत की संगति की जाती है। इस प्रकार दांतों से दबाकर बजाने के कारण 'मुंह' 'चंग'– मुंहचंग/मुखचंग नाम उपयुक्त है। यह वाद्ययंत्र बहुत ही सीमित हो चुका है। उत्तराखण्ड प्रदेश की बात करें तो यहाँ यह विलुप्त होने को है। लेखक ने जगह–जगह जाकर इसे ढूंढा लेकिन इसे बनाने वाले शिल्पी भी इसे नहीं बना रहे हैं। सुरम्य स्थल बेरीनाग के बोराखेत में रहने वाले सेना के रिटायर्ड सूबेदार व काष्ठकला में प्रवीण श्री अर्जुनराम चम्याल जी ने एक बिणई सन् 2014 में लेखक को दी थी। इस छोटे से वाद्ययन्त्र को हिफाजत से रखने के लिये उन्होंने लकड़ी की एक आकृति भी बनाई ताकि डोरी से लपेट कर विणई को इसमें रखा जा सके। लेखक के पास यह वाद्ययन्त्र सुरक्षित है।[3]

'मुरचंग' लोहे की शिल्पकारी का एक अद्भुत लोकवाद्य है। उत्तराखण्ड में दस्तकारी में लगे लोक समूह को उसी सामान्य रूप से शिल्पकार की जातीय संज्ञा प्रदान की गयी है, जिस प्रकार से बंगाल प्रदेश में लोहे के दस्तकारों को कर्मकार की प्रदान की गई है। लोहे को घन, हथौड़े, निहाई, भट्टी की मदद से ठोक–पीटकर तरह–तरह के औजारों की शक्ल में बदलने वाले पर्वतीय शिल्पकार जहाँ कृषि यन्त्र– खुरपी, कुटला, कुदाल आदि और अन्य औजार– चाकू, भाला, तलवार इत्यादि तथा साधारण उपयोग की परम्परागत जरूरी चीजें बनाते हैं, वहीं ये कुछ कलात्मक और असाधारण चीजें उदाहरणार्थ– कुण्डे, ताले, मुरचंग/बिणई आदि बनाने की परम्परा संयोये हुए हैं। प्रचलन में न होने से विणई नहीं बनाई जा रही है। इसे बजाने वाले भी सीमित हैं। कुमाऊँ में इसे 'विणैं' भी कहा जाता है। विणई को लेकर अद्भुत प्रयोग लोककलाकार श्री जुयाल द्वारा किया गया है। लेखक ने संगीत नाटक अकादमी नई दिल्ली द्वारा चण्डीगढ़ में आयोजित 'वृहद्देशी संगीत समारोह' में लोकगायक श्री नरेन्द्र सिंह के साथ पधरे श्री रामचन्द्र जुयाल का विणई में अद्भुत एकल मंचीय प्रदर्शन देखा। सीधी ताल, आड़ी ताल व पल्टों की गुंजाहट में श्रोता भावविभोर हो गये थे। अपने एक अध्ययन में मासी जिला अल्मोड़ा की संस्था इन्हेयर का कहना है– ''विणैं के स्वर बड़े सुमधुर होते हैं। इन स्वरों में कारूणिकता विद्यमान रहती है। वर्तमान में यह वाद्ययन्त्र प्रायः लुप्त सा हो गया है।''[4]

पूर्णतः लोहे के बने इस लोक वाद्य की इस पर्वतीय प्रदेश में बहुत उपयोगिता पशुचारण में लगे लोगों के बीच रही है। बांसुरी या मुरचंग ही इनमें लोकप्रिय व मन बहलाने का साधन रहा है। इसके अलावा पैदल यात्राओं के जमाने में दूर–दूर तक यात्रा पर जाने वाले व्यापारियों के पास भी विणई मिल

जाती थी। समय बदला, मनोरंजन के साध्न बढ़ते चले गये, रहन–सहन, कार्य– व्यवहार बदले, ऐसे में 'विणई' जैसे वाद्ययन्त्र विलुप्त हो चुके हैं या विलुप्ति के कगार पर हैं। मुरचंग के बारे में गीत रचनाओं में काफी जगह उल्लेख आया है। उदाहरण के लिये पहाड़ की बैठ होली की धमार का रचना प्रस्तुत है–

''मनसुख लाओ मृदंग,
नाचत आई चन्द्रावलि पग बांधे घुंघरवा।
ताल पखावज बाजन लागे, अरु डपफली मुरचंग।''[5]

विणई चिमटी में पिन लगा जैसा छोटा या वाद्ययन्त्रा है, जिसे आसानी से जेब में रखा जा सकता हे। इससे दो–तीन भिन्न–भिन्न स्वरों में दो–तीन पटाक्षर– भुन्न–भुन्न और भन्न–भन्न उत्पन्न होते हैं। उन पटाक्षरों की मदद से इस लोक वाद्य पर विभिन्न लयों की चमत्कारी संगतियां सम्भव हैं। इसे कभी एकल और कभी गीत की संगति में लोक कलाकार बजाते हैं। डॉ.लालमणि मिश्र ने लोक–संगीत वाद्यों को उद्देश्य की दृष्टि से दो वर्गों में बांटा है। पहला वर्ग उन वाद्यों का है जिन्हें हम लय अथवा ताल के लिये बजाते हैं। स्वर के लिए बजाये जाने वाले तत तथा सुषिर वर्ग के वाद्य होते हैं जिनकी संख्या तथा भेद लोक–संगीत में अधिक नहीं है। लय अथवा ताल के लिए बजाये जाने वाले अवनद्ध तथा घन के अन्तर्गत आते हैं। भारतीय लोक–संगीत में इनकी संख्या इतनी अधिक है कि देखकर आश्चर्य होता है।[6]

विणई की विशेषता है कि इसमें ट्यूनिंग की बड़ी ही संवेदनशील गुंजाइश होती है। वाद्य की 'भन्न–भन्न' पटाक्षर प्रदान करने वाली स्टील या लोहे मुख्य पतली सी चपटी पट्टी पर थोड़ी मोम जमाकर या उस मोम को कम ज्यादा करके इसके मुख्य स्वर को थोड़ा चढ़ाया या उतारा जा सकता है। इसको ठीक से समझने के लिये कहना उपयुक्त होगा कि जिस प्रकार मृदंग के मुंह पर आटे को लगाकर उसमें बायें को दाहिने के समानान्तर स्वर में मिलाते हैं, उसी प्रकार से मुखचंग/मुंहचंग/विणई को भी मिलाया जा सकता है। इस प्राचीन और चिमटीनुमा वाद्ययन्त्र की यादें अब किवाड़ों में बन्द सी होती जा रही हैं। जो भी हो, इनके बारे में जानकारी तो होनी ही चाहिये।

सन्दर्भ–

1. लालमणि मिश्र, *भारतीय संगीत वाद्य,* भारतीय ज्ञानपीठ, 18 इंस्टीट्यूशनल एरिया लोदी रोड नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण 2002, पृष्ठ– 353–354
2. वही, पृष्ठ– 360
3. पिघलता हिमालय यूट्यूब चैनल मे विणई की जानकारी। https://youtu.be/cYiKa9gU7Vg
4. पिघलता हिमालय, हल्द्वानी ;नैनीताल दिनांक 4 अगस्त 2019 के अंक में
5. पंकज उप्रेती, *कुमाऊँ का होली गायन : लोक एवं शास्त्र,* पृष्ठ 119
6. लालमणि मिश्र, *भारतीय संगीत वाद्य,* भारतीय ज्ञानपीठ, 18 इंस्टीट्यूशनल एरिया लोदी रोड नई दिल्ली, द्वितीय संस्करण 2002, पृष्ठ– 360